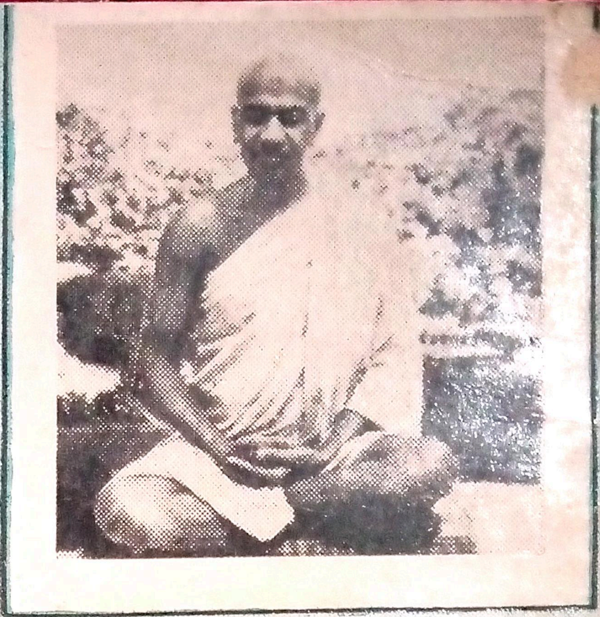


दक्षिणापथ की साधनायात्रा

प्रा. प्रतापकुमार टोलि

Hindi: Publisher 1985 : Gujarati 1990

दक्षिणापथ की साधना यात्रा

(श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हंपी के प्रथम दर्शन का आलेख)

RECORD BOOK ON CD (SPOKEN WORDS)

प्रेरक :

पू० आत्मज्ञा माताजी श्री धनदेवीजी

(Not yet on computer network)

लेखक :

✓ प्रा० प्रतापकुमार ज. टोलिया

एम. ए. (हिन्दी); एम. ए. (अंग्रेजी); साहित्यरत्न, जैन संगीत रत्न

अनुवादिका :

✓ कु० पारुल प्र० टोलिया

एम. ए. (हिन्दी) सुवर्ण पदक विजेता

प्रकाशक :

वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउन्डेशन

१२, केम्ब्रिज रोड, बेंगलोर–५६०००८ (फोन : 080 26667882)

एवं न्यूयार्क, मैरीलॅन्ड, पिट्सफर्ड, लन्दन ।

5300556

गुजराती में मूल लेखक :	प्रा० प्रतापकुमार टोलिया
अनुवादिका :	कु० पारुल प्र० टोलिया
आंशिक अर्थ सहायक :	श्री एल. गुलाबचंद झाबख, कूनूर, नीलगिरि एवं एक गुप्त गुरुबंधु, कोचीन
प्रकाशक :	वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउन्डेशन बेंगलोर–न्यूयार्क–मैरीलेन्ड–पिट्सफर्ड–लन्दन
मुद्रक :	दीपक आर्ट प्रिन्टर्स बैंक स्ट्रीट, कोठी, हैदराबाद–१
प्रतियाँ :	१०००
संस्करण :	प्रथम
वर्ष :	अक्तूबर, १९८५
सर्वाधिकार :	कु० पारुल प्र० टोलिया

मूल्य	रु. ५–००, डाक व्यय ०–५०

१

दक्षिणापथ की साधनायात्रा (हिन्दी) की प्रस्तावना (1985)

दो शब्द

चौदह वर्षों पूर्व, यहाँ वर्णित भूमि-श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हंपी-के प्रथम दर्शन के उपरांत यह लेख लिखा था। उसके पश्चात् इस भूमि के प्रति इतना आकर्षण रहा कि इन पंक्तियों के लेखक ने, आश्रम की अभिनव भूमि पर, स्वयं साधना एवं विद्यापीठ के निर्माण हेतु, अहमदाबाद के गुजरात विद्यापीठ का प्राध्यापक-पद तक छोड़कर, बेंगलोर एवं हम्पी आकर निवास किया। इस स्थानांतरण एवं विद्यापीठ-निर्माण कार्य की प्रेरणा एवं आज्ञा देनेवाले थे—परम उपकारक विद्यागुरु पद्मभूषण प्रज्ञाचक्षु डॉ. पंडित सुखलालजी, जिन्होंने लेखक को अपनी निश्रा एवं सेवा-शुश्रूषा भी छुड़वाकर दूर दक्षिण में भेजा। उसके बाद की कहानी भी लंबी-चौड़ी है, जो 'साधना-यात्रा का संधान पथ' के नाम से इसी क्रम में लिपिबद्ध हो रही है। आज योगीन्द्र श्री सहजानंदघनजी सदेह से नहीं रहे, प्रज्ञाचक्षु पंडितवर्य श्री सुखलालजी भी नहीं रहे, परंतु इन महापुरुषों की प्रेरणा एवं भावना, कई प्रतिकूलताओं के बीच से भी, चौदह वर्षों की तपस्या के पश्चात् अब साकार रूप लेने जा रही है।

इस विषय में अधिक अभिव्यक्ति एवं जानकारी पाठकों के प्रतिभाव एवं रुचि जानने के पश्चात् । यहाँ प्रस्तुत है

केवल एक ही दिन के इस प्रथम दर्शन का आलेख । मूल गुजराती से हिन्दी में अनुवाद एवं सम्पादन मेरी सुपुत्री कु. पारुल ने, परिश्रमपूर्ण, सुन्दर एवं समयबद्ध मुद्रण भाई श्री हरिश्चन्द्रजी विद्यार्थी ने एवं आंशिक अर्थसहायता कुछ सहधर्मी गुरु-बंधुओं ने की है, जिसके लिये सभी का मैं आभारी हूँ । मेरे साहित्य विद्यागुरु श्रद्धेय डा० रामनिरञ्जन पाण्डेयजी का भी उनके मूल्यवान आमुख के लिये अनुगृहीत हूँ ।

इस साधनायात्रा की, जो कि अब भी चौदह वर्षो के उपरांत भी सतत् चल रही है, सदा-सर्वदा की साक्षी प्रेरक एवं आशीर्वाद-प्रदात्री रही है—परम उपकारक आत्मज्ञा जगत्माता पूज्य माताजी, जिनका तो अनुग्रह मानना भी शब्दों के द्वारा सम्भव नहीं । उनकी निर्मलात्मा को वन्दना भर कर अभी तो विदा चाहता हूँ ।

प्रतापकुमार टोलिया

यो. यु. सहजानंदघनजी जन्मदिन भा. शु. १०,
वि. सं. २०४१, २३-९-१९८५,
१२ कैम्ब्रिज रोड, बैंगलोर—५६०००८

१

आमुख

साधना की स्थिति परम धन्य है जो इसके पथ पर चल पड़ता है वह स्वयं अपने को तथा दूसरों को भी धन्य बना सकता है। इस पथ पर चलने वाले को क्रमशः प्रकाश प्राप्त होने लगता है और धीरे-धीरे परम प्रकाश की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। हजारों सूर्यों के प्रकाश से भी अधिक तेजोवान आत्मा का प्रकाश होता है। जिसको वह प्रकाश प्राप्त हो जाता है उसके भीतर से अज्ञान का अन्धकार समाप्त हो जाता है। वह सर्वज्ञ हो जाता है। 'सत्यं ज्ञानं अनन्तम् ब्रह्म' ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अनन्त तत्त्व है। जिसे यह ब्रह्मसिद्धि प्राप्त हो जाती है उसकी चेतना अनन्तभेदिनी हो जाती है। उस अनन्त चेतना में सब कुछ समा जाता है, यह अनन्त चेतना सब कुछ देखने लगती है। कोई वस्तु इससे छिप नहीं सकती। ब्रह्मज्ञानी सर्वज्ञ हो जाता है। सब कुछ जानता है। जो ब्रह्मज्ञानी नहीं होता उसकी चेतना अनन्त न होकर सीमित ही रहती है। सीमा में सर्व कैसे समा सकता है। सीमित चेतनावाला मनुष्य सर्वज्ञ कैसे हो सकता है।

साधना के पगों का निर्माण गुरु की सहायता से होता है। इस पथ पर वही गुरु आगे ले जा सकता है जो स्वयं यह यात्रा पूरी कर चुका रहता है। जो स्वयं पथ नहीं जानता वह शिष्य को कहां ले जा सकता है। इसी सत्य का उद्घाटन करते हुए कबीर ने कहा है—जाका गूरु है अन्धला चेला खरा

निरन्ध । अन्धा अंधे ठेलिया दून्यूँ कूप पड़न्त । –जिसका गुरु अंधा है वह शिष्य भी उससे अधिक अंधा होगा । जब एक अंधा दूसरे अंधे को ठेल-ठेल कर आगे बढ़ाता हैं, तो दोनों एक साथ कुएँ में गिरते हैं ।

सच्चे गुरु का लक्षण बताते हुए कबीर कहते हैं–बलिहारी गुरु आपणी द्यौ हाड़ी के बार । लोचन अनंत उघाड़िया अनंत दिखावण हार ।–गुरु आप धन्य हैं । आप तो स्वर्गीय अनन्त सत्य का दर्शन हर क्षण करते रहते हैं । आपने मेरे भीतर अनन्त नयन खोल दिये जिससे मैं अनन्त को देख सकूं ।–अनन्त लोचन ही अनन्त का दर्शन करा सकते हैं । जो नेत्र जगत् के स्वार्थों की साधना के लिये केवल कुछ ही लोगों तक सीमित रह जाते हैं, वे अनन्त को कैसे देख पायेंगे । जब नयनों की सीमा अनन्त बन जाती है तभी अनन्त सत्य परमात्मा का दर्शन होता है । परमात्मा की प्राप्ति नहीं उसका दर्शन ही होता है । प्राप्त तो वह हर क्षण में रहता है; पर उस प्राप्त को अज्ञान देखने नहीं देता । ठीक उसी तरह जिस तरह कोई वस्तु हमारे हाथ में ही रहती है, पर हम उसे ढूंढ़ते रहते हैं । कबीर ने कहा है–तेरा साईं तुज्झ में ज्यों पुहुपन में बास । कस्तूरी के मिरग ज्यूँ इत उत सूँघत घास । तेरा स्वामी तो तेरे ही भीतर है जैसे फूल की सुगन्ध फूल में समाई रहती है । कस्तूरी की सुगन्ध मृग के भीतर ही रहती है, पर वह उसे पाने के लिये इधर - उधर घास सूँघता रहता है । प्रत्येक परमाणु में शक्ति बनकर बैठा हुआ

परमात्मा प्रति पल सब को प्राप्त है; पर उसको देखने की शक्ति प्राप्त करनी पड़ती है ।

अनन्त परमात्मा तक पहुँचाने वाली यात्रा भी अनन्त ही रहती है । उस यात्रा के पथ पर यदि सद्गुरु मिल गया तो यात्री धन्य बन जाता है । दक्षिणापथ ही क्यों ? वह तो सब दिशाओं में है । इसी लिये दक्षिण में भी । दक्षिण में भी धन्य लोग हैं, पूर्व, पश्चिम और उत्तर में भी–एक - से - एक धन्य । हाँ, उनको खोजने की आवश्यकता होती है । साधक का भाग्य अच्छा रहता है तो उसे सिद्ध गुरु प्राप्त हो जाता है । इसी को कबीर ने–कछू पूरबला लेख–कहा है । पूर्व जन्म की साधना आगे बढ़ी हुई रहती है तो इस जन्म में सिद्धि शीघ्र मिल जाती है । ये संस्कार मनुष्य में ही नहीं, पशु-पक्षी में भी रहते हैं । टोलियाजी ने अपनी इस कृति में आत्मराम श्वान की सुन्दर चर्चा की है । जटायु, जाम्बबान, हनुमान और काक भुशुण्डि भी तो ऐसे ही साधक थे । उदयपुर का गजराज भी इन्हीं संस्कारों का धनी था । मत्स्य, कच्छप, वराह और शेषनाग के शरीर में भी तो अनंत संस्कारवान् नारायण बैठ गये थे । वे नारायण कहां नहीं हैं। प्रह्लाद के लिये तो खम्भे से प्रकट हो गये । धर्मराज युधिष्ठर के साथ भी श्वान स्वर्ग तक गया था । श्वान के समान स्वामिभक्ति का आदर्श और कहां मिलेगा ? इसीलिये कबीर ने कहा–"कबीर कूता राम का, मोतिया मेरा नाउँ । गले राम की जेवरी, जित खींचे तित जाउँ ।" कबीर राम का कुत्ता है । मोती मेरा नाम है । मेरे गले में राम की,

उनके प्रेम की रस्सी बँधी हुई है वे मुझे जिधर खींच कर ले जाते हैं उधर ही में चला जाता हूँ। शरणागत मुक्त पुरुष की भक्ति का आदर्श जैसा श्वान के हृदय में स्थापित मिलता है, वैसा अन्यत्र सम्भव नहीं।

सत्य, अहिंसा और प्रेम की शक्ति अपार होती है। सब महात्मा इन्हीं की सिद्धि प्राप्त करने के लिये साधना करते रहते हैं। जिनको यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है, वे जिन हो जाते हैं, इन्द्रियातीत भगवान हो जाते हैं, समग्र विश्व को वे पवित्र और पावन बना देते हैं। जैन महात्माओं ने भी इन क्षेत्रों में अद्भुत सिद्धि प्राप्त की। इसी सिद्धि की प्राप्ति के बाद अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा था–नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर–हे देवों के देव तुम्हारी ही कृपा से मेरा अज्ञान दूर हो गया। मुझे अपने अनन्त स्वरूप का स्मरण प्राप्त हो गया है। टोलियाजी ने अपनी साधना के इन पथ पर ऐसे जैन महात्माओं की चर्चा की है, जिनमें विश्व मैत्री स्थापित हो चुकी थी जो समग्र विश्व को प्रेममय और पवित्र बना सकते थे। ऐसे महात्माओं के स्मरण मात्र से मन पवित्र हो जाता है। इसी पावन स्मृति को शाश्वत धारा में स्थापित करने के लिये उन प्रात स्मरणीय आत्माओं के जीवन को अक्षर-ब्रह्म को अर्पित कर ग्रन्थ का रूप दे दिया जाता है। टोलियाजी का यह सफल प्रयास अनुशीलन करने वालों का मन निर्मल बनाने की शक्ति धारण करता है। इस ग्रन्थ को अनन्त प्रणाम।

– रामनिरंजन पाण्डेय

दक्षिणापथ की साधना-यात्रा

–प्रा. प्रतापकुमार टोलिया

> दक्षिण भारत के प्राचीन ऐतिहासिक तीर्थ रत्नकूट-हम्पी-विजयनगर-पर निर्मित हो रहे नूतन तीर्थधाम 'श्रीमद् राजचंद्र आश्रम', उसके संस्थापक महामानव योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी एवं कुछ साधकों की प्रथम दर्शन-मुलाकात की एक परिचय-झांकी :
>
> एक झलक १९६९ की

कर्नाटक प्रदेश : बेल्लारी जिला गुंटकल-हुबली रेल्वे लाइन पर स्थित होस्पेट रेल्वे स्टेशन से सात मील दूर बसा हुआ प्राचीन तीर्थधाम हम्पी.........

यहाँ पर केले, गन्ने और नारियल से छाई हुई हरियाली धरती के बीच-बीच खड़ी है; असंख्य शिलाएं और छोटी बडी पथरीली पहाड़ियां। साथ ही साथ दूर तक मीलों और

मीलों के विस्तार मे फैले पडे हैं–जिनालय, शिवालय, वैष्णव मंदिर और विजयनगर साम्राज्य के महालयों के खंडहर एवं ध्वँसावशेष। हम्पी तीर्थ के नीचे के भाग में खडे विरूपाक्ष शिवालय और उसके निकट की ऊँचाई पर स्थित चक्रकूट, "हेमकूट" के अनेक ध्वस्त जिनालयों के ऊपरी पूर्व भाग में फैली हुई हैं रत्नगर्भा वसुन्धरा की सुरम्य पर्वतिका "रत्नकूट"। रत्नकूट के उत्तरी भाग में नीचे कुछ चक्राकार बह रही है–स्थित प्रज्ञ-की-सी तीर्थ-सलिला तुँगभद्रा: सदा-सर्वदा, अविरत, बारह माह।

बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत के समय से अनेक महा-पुरुषों एवं साधक जनों ने पौराणिक एवं प्रकृति-प्रलय के परिवर्तनों की स्मृति दिलाने वाले इस स्थान का पावन संस्पर्श किया है। दीर्घकाल व्यतीत होते हुए भी उनकी साधना के आंदोलन एवं अणु-परमाणु इस धरती और वायु-मण्डल के कण-कण और स्थल स्थल में विद्यमान प्रतीत होते हैं। मुनिसुव्रत भगवान के शासन काल में अनेक विद्याधर सम्मिलित थे–उनमें विद्या सिद्ध राजाओं में थे–रामायण प्रसिद्ध बाली, सुग्रीव आदि। यह विद्याधर भूमि ही उनकी राजधानी थी। 'वानर द्वीप' अथवा 'किष्किन्धा नगरी' के नाम से वह पहचानी गई है। यहाँ के अनेक पाषाण अवशेष उसकी साक्षी देते हैं। तत्पश्चात् एक लम्बे से काल-खंड के बीतने के पश्चात् सृजित हुए–विजय नगर के सुविशाल, सुप्रसिद्ध साम्राज्य के महालय और देवालय। ईस्वी सन् १३३६ में

एवं १७वीं शताब्दी तक अपना अस्तित्व टिकाये रखकर अन्त में विविध रूप में विनाश को प्राप्त ये महालय अपने अपार वैभव की स्मृति छोड़ते गये, ऊंचे अडिग खडे उनके खंडहरों के द्वारा।

* बुलावे गुफ़ाओं गिरि-कन्दराओं के-

इन सभी के बीच महत्वपूर्ण हैं-अनेक जिनालयों के खंडहरों वाले 'हेमकूट,' 'भोट' एवं 'चित्रकूट' के, "सद्‌भक्त्या स्तोत्र" उल्लिखित प्राचीन, पहाडी जैन तीर्थ। उनका इतिहास, भगवान मुनिसुव्रत स्वामी के समय से लेकर ईस्वी सन् की सातवीं सदी तक एवं क्वचित् क्वचित् उसके बाद तक भी जाता हुआ दिखाई देता है उक्त 'हेमकूट' के पूर्व मे एवं उत्तुंग खडे "मातंग" पहाड़ के पश्चिम में हैं-गिरि-कन्दराएँ, शिलाएँ, जलकुंड, एवं खेतों से भरा हुआ, किसी परी-कथा की साकार सृष्टि का-सा 'रत्नकूट' पर्वतिका के शैल प्रदेश का विस्तार।

अनेक साधकों की विद्या, विराग एवं वीतराग की विविध साधनाओं की साक्षी देने वाली और महत्‌पुरुषों के पावन संचरण की पुनीत कथा कहने वाली रत्नकूट की ये गुफाएं, गिरि कन्दराएं एवं शिलाएं मानो भारी बुलावा देकर "शाश्वत की खोज" मे निकले हुए साधना-यात्रियों को बुलाती हुई प्रतीत होती हैं, अपने भीतर संजोए रखे हुए अनुभवी जनों के सदियों पुराने; फिर भी चिर नये ऐसे जीवन

संदेश को वर्तमान मानव तक पहुँचाने के लिये उत्सुक खड़ी दिखाई देती हैं......। उसके अणु-रेणु से उठने वाले परमाणु इस संदेश को ध्वनित करते हैं। पूर्वकाल में अनेक साधकों की साधना भूमि बनने के बाद, इस सन्देश के द्वारा नूतन साधकों की प्रतीक्षा करती हुई पर्याप्त समय तक निर्जन रही हुई एवं अंतिम समय में तो दुर्जनावास भी बन चुकी इन गुफाओं–गिरि-कन्दराओं के बुलावों को आख़िर एक परम अवधूत ने सुने.....।

बीस वर्ष की युवावस्था में सर्वसंग परित्याग कर जैन मुनि-दीक्षा ग्रहण किये हुये, बारह वर्ष तक गुरुकुल में रह कर ज्ञान-दर्शन-चरित्र की साधना का निर्वहन किये हुए एवं तत्पश्चात् एकाँतवासी-गुफावासी बने हुए ये अवधूत अनेक प्रदेशों के वनोपवनों में विचरण करते हुए, गुफाओं में बसते हुए, अनेक धर्म के त्यागी-तपस्वियों का सत्संग करते हुए विविध स्थानों में आत्मसाधना कर रहे थे। अपनी साधना के इस उपक्रम में अनेक अनुभवों के बाद उन्होंने अपने उपास्य पद पर निष्कारण करुणाशील ऐसे वीतराग पथ-प्रदर्शक श्रीमद् राजचंद्रजी को स्थापित किया। मूलतः कच्छ के, पूर्वाश्रम में 'मूलजी भाई' के नाम से एवं श्वेताम्बर जैन साधु-रूप के दीक्षा-पर्याय में भद्र-मुनि' के नाम से पहचाने गये एवं एकांतवास तथा दिगम्बर जैन क्षुल्लकत्व के स्वीकार के पश्चात् 'सहजानंद घन' के नाम से प्रसिद्ध यह अवधूत अपने पूर्व-संस्कार से, दूर दूर से आ रहै इन गुफाओं के

बुलाओं को अपनी स्मृति की अनुभूति के साथ जोड़कर अपने पूर्व परिचित स्थान को खोजते अन्त में यहां अलख जगाने आ पहुँचे ..... ।

ये धरती, ये शिलाएँ, ये गिरि कन्दरायें मानों उनको बुलावा देती हुई उनकी प्रतीक्षा में ही खडी थीं ...... । रत्नकूट की गुफाओं मे प्रथम पैर रखते ही उनको वह बुलावा स्पष्ट सुनाई दिया । पूर्व स्मृतियों ने उनकी साक्षी दी । अंतस् की गहराई से आवाज़ सुनाई दी–"जिसे तू खोज रहा था, चाह रहा था, वह यही तेरी पूर्व-परिचित सिद्धभूमि ।"

* अवधूत का अलख जागा...और साकार हुआ गिरिकंदराओं में आश्रम !

और उन्होंने यहाँ अलख जगाया । एकांत, वीरान एवं भयावह इन गुफाओं में आरंभ हुआ उनका एकांतवास । निर्भय एवं अटल रूप से उन्होंने अपनी अधूरी साधना पुनः आरंभ की । उस साधना का लाभ दक्षिण भारत के अनेक साधक उठा सकें, इस उद्देश्य से उन गिरि-कन्दराओं में साकार हुआ यह 'श्रीमद् राजचंद्र आश्रम' । श्रीमद् इस साधना के केन्द्र-बिन्दु थे । आज से आठ वर्ष पूर्व, वि. सं. २०१७ में 'आत्म तत्त्व की साधना के अभीप्सुओं के लिए, बिना किसी जाति-वेश, भाषा, धर्म, देश इ. के बंधन लिए हुए ।

'रत्नकूट' की प्राचीन साधना भूमि की विभिन्न गुफाओं गिरि कंदराओं एवं शिलाओं के मध्य इसका विस्तार होता चला ...... सर्व-धर्मों के साधक इस साधना से आकर्षित हो दूर दूर से आने लगे ......'श्रीमद् राजचंद्रजी की आत्म-दर्शन की आतुरता एवं परमपद-प्राप्ति हेतु नियत विशुद्ध साधनामय जीवन एवं कवन" से दक्षिण के अपरिचित साधक प्रभावित होने लगे। उनके जीवन-दर्शन एवं निर्देश के अनुसार साधना करवा रहे अवधूत श्री सहजानंदघन-भद्रमुनि की अन्य धर्माचार्यों एवं राजपुरुषों ने स्तुति की। यह उनकी समन्वयात्मक स्याद्वाद शैली की साधना की एक अतुलनीय सिद्धि है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण था। रामानुज संप्रदाय के आचार्य श्री तोलप्पाचार्य एवं मैसूर राज्य के गृहप्रधान श्री पाटिल द्वारा 'रत्नकूट' की जमीन का प्रदान। ३० एकड़ के विस्तार कीं उस पर्वतीय भूमि पर आज लगभग दस गुफाएं, सर्वसासारण एवं व्यक्तिगत निवास-स्थान, गुरुमंदिर, गुफामंदिर भोजनालय एवं छोटी-सी गौशाला पाये जाते हैं। कई निबासखंड, एक दर्शन विद्यापीठ, सभामंडप, श्रीमद् राजचंद्रजी का ध्यानालय, एवं एक जिनालय निर्माणाधीन हैं। आश्रम में एकाकी एवं सामूहिक दोनों प्रकार से सम्यग् दर्शन-चरित्र की, दूसरे शब्दों मे दृष्टि, विचार, आचार शुद्धि एवं भक्ति, ज्ञान, योग की सा्रना चल रही है। आश्रम के द्वार बिना किसी भेदभाव के सब साधकों के लिये खुले हैं। साधकों के लिये कुछ नियम अवश्य हैं, जिसमें श्रीमद् राजचन्द्रजी के जीवन दर्शन, आचार एवं विचार का प्रतिबिम्ब

है। प्रथम नियम ध्यान आकर्षित करता है–"मत-पंथ के आग्रहों का परित्याग एवं पन्द्रह भेद से सिद्ध के सिद्धांतानुसार धर्म-समन्वय।"

यह नियम श्रीमद् के सुविचार की स्मृति दिलाता है "तुम चाहे किसी धर्म को मानों, मैं निष्पक्ष हूँ......... जिस राह से संसार के मल का नाश हो, उस भक्ति-मार्ग धर्म एवं सदाचार का तुम पालन करना।"

साधकीय नियमावली के अन्य निषेधों में इस सदाचार का समावेश हो जाता है, यथा, सात व्यसन, रात्रिभोजन, कंदमूल आदि अभक्ष्य पदार्थों का वीतरागता युक्त त्याग।

यहाँ व्यक्तिगत या सामुदायिक रूप से साधना करने का स्वातंत्र्य है। इसमें स्वाध्याय, सामयिक-प्रतिक्रमण इत्यादि धर्मानुष्ठान, ध्यान, भक्ति, मंत्रधुन, प्रार्थना, भजन इत्यादि का समावेश होता है। साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक कार्यक्रमों के अलावा प्रतिदिन सत्संग स्वाध्याय, प्रवचन एवं सुबह शाम का भक्तिक्रम इतना सामुदायिक रूप से चलता है; यह भी अनिवार्य नहीं है, परंतु कोई भी इसका आनन्द, इसका लाभ छोड़ना नहीं चाहता।

ऐसी समन्वयात्मक दृष्टि को लेकर आश्रम में स्वातंत्र्य पूर्वक स्वाध्याय, सत्संग, भक्ति-ध्यान की आत्मलक्षी साधना चल रही है। यह साधना जब हरेक के श्रेय केलिये सामुदायिक रूप से चलती है तब समाजलक्षी हो जाती है एवं

सत्, शुद्ध परमाणु समाज के दूषित वायु मण्डल में बहने लगते हैं।

इस साधनाभूमि एवं यहाँ की साधना की यह एक छोटी-सी झलक है।

❋ छिपा हुआ इतिहास—

प्राचीन "किष्किंधा" नगरी एवं विजय नगर" के प्रसादों के भव्य इतिहास की तरह साधकों को सुरम्य एवं भीरुओं को भयावह प्रतीत होती इन गिरि-कंदराओं एवं गुफाओं का भी अद्भुत इतिहास है, जो कि काल के गर्भ में छिपा हुआ है। कई निर्ग्रन्थों ने यहां ध्यानस्थ होकर ग्रंथिभेद किया है, कई जोगियों ने जोग साधा है, अनेक ज्ञानियों ने यहां विश्व चिंतन एवं आत्म-चिंतन द्वारा स्व-पर के भेदों को सुलझाया है, अनेक भक्तों ने यहां पराभक्ति के अभेद का अनुभव किया है एवं विविध भूमिकाओं के साधकों ने यहां स्वरूप-संधान किया है। इनका इतिहास किताबों के पन्नों पर नहीं, अपितु यहां के वातावरण में छिपा हुआ है एवं गुफाओं-गिरि-कंदराओं में से उठते आंदोलनों के सूक्ष्म घोष-प्रतिशोधों में सुनाई दे रहा है। किसी नीरव गुफा में प्रवेश करते ही इसकी ध्वनि सुनाई देती है.........जो स्थूल में से सूक्ष्म एवं शून्य निर्विकल्पता की ओर ले जाती है.........।

अनेक महापुरुषों की पूर्व-साधना की भूमिका यह इतिहास प्रेरणा एवं शांति-समाधि प्रदायक है।

यहां आकर बसनेवाले इस अवधूत संशोधक को पूर्व-कालीन साधकों की ध्वनि-प्रतिध्वनि एवं आंदोलनों को पाने से पूर्व कई तकलीफों का सामना करना पड़ा। इन गिरि-कन्दराओं में उस समय हिंसक पशु, भटकती अशांत प्रेतात्माएं, शराबी एवं चोर-डाकू, मैली विद्या के उपासक एवं हिंसक तांत्रिकों का वास था। इस भूमि के शुद्धीकरण के क्रम के अन्तर्गत घटी कुछ घटनाओं का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा।

❊ –जब हिंसा ने हार मानी...!

आश्रम की स्थापना के पूर्व जब भद्रमुनि इन गुफाओं में आये तब उन्हें पता चला कि यहां कई तांत्रिक अत्यंत क्रूरता से पशु-बलि दे रहे हैं। दूसरी ओर इन हिंसक लोगों के मन में इस अनजान अहिंसक अवधूत के प्रति भय उत्पन्न हुआ। उनके अपने कार्य में इनसे विक्षेप होगा, ऐसा मान उनको ख़त्म कर देने का उन्होंने निश्चय किया।

जब ये तांत्रिक पशुबलि दे रहे थे तब भद्रमुनि उन्हें प्रेम से समझाने उनकी ओर चले। चट्टानों के ऊपर से आ रहे मुनि को देख तांत्रिक तत्क्षण ही उन्हें मार देने के विचार से उनकी ओर दौडे। हाथ में हथियार थे। मुनिजी ने उनको आते देखा, परन्तु उन्हें अहिंसा व प्रेम की शक्ति

पर विश्वास था, अतः वे निडर रूप से उनकी तरफ चलते रहे...... कुछ क्षणों की ही देर थी...... शस्त्रबद्ध तांत्रिक उनकी ओर लपके...... उस अहिंसक अवधूत का हाथ आदेश में ऊँचा उठा, अपलक आंखों से उन्होंने तांत्रिकों को देखा.... और उनमें से अहिंसा और प्रेम के जो आंदोलन निकले, उनके आगे तांत्रिक रुक गये, उनके शस्त्र गिर गये एवं वे हमेशा के लिए वहां से भाग गये। अहिंसा के आगे हिंसा हार गई !! निर्दोष पशुओं को अभयदान मिला। हिंसा सदा के लिए विदा हो गयी। निर्दोष पशुओं के शोषण से मलिन वह धरती पुनः शुद्ध हुई।

* हिंसा के स्थानों में अहिंसा की प्रतिष्ठा...!

हिंसा को मिटाने के साथ ये अवधूत अहिंसा और प्रेम के शस्त्र से उन हिंसक तांत्रिकों को बदलना चाहते थे, परंतु वे रुके नहीं।

उनके भागने की बात सुनकर इस घटना में हिंसा के ऊपर अहिंसा की विजय देखने के बजाय लोग इसे 'चमत्कार' मानने लगे। अन्य तांत्रिक, मैली विद्या के उपासक, चोर-डाकू व शराबी भी इस स्थान से चले गये। आखिर लातों के भूत बातों से कैसे मानते ? वे तो 'चमत्कार' को ही 'नमस्कार' करनेवाले जो थे।

कई साधकों ने इन निर्जन गुफाओं में अशांत, भटकती प्रेतात्माओं का आभास पाया था, अतः भद्रमुनिजी ने इन गुफाओं को शुद्ध बनाया व प्रेतात्माओं को शांत किया।

अब बचे थे हिंसक प्राणी। श्रीमद् राजचंद्र द्वारा अनुभूत एवं 'अपूर्व अवसर' में वर्णित ऐसे उन 'परम मित्रों' का परिचय भद्रमुनिजी को अन्य वनों-गुफाओं में हो चुका था। श्रीमद् के शब्द उनके मन में गूंज रहे थे :

"एकाकी विचारतो वळी श्मशान मां,
वळी पर्वत मां वाघ सिंह संयोग जो,
अडोल आसन ने मनमां नहीं क्षोभता,
परम मित्र नो जाणे पाम्या योग जो।
अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?"

शेर, बाघ, चीते— ये 'परम मित्र' दिन में भी दिखाई देते। जिस गुफा में ये एकाकी अवधूत साधना करना चाह रहे थे, उसमें भी एक चीता रहता था। परंतु उन्होंने निर्भयता से उसे अपना मित्र मान वहीं निवास दिया एवं 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।'— पतंजलि के इस योग सूत्र को जैसे न्याय देते हुए वह हिंसक पशु अपना वैर त्याग उस अहिंसक अवधूत के पास रहा भी। बाद में वह अन्यत्र चला गया। तब से लेकर आश्रम के बनने के बाद आज तक, उसी गुफा— वर्तमान गुफामंदिर की अंतर्गुफा— में श्री भद्रमुनिजी की साधना चल रही है। उसी में १६ फुट का सांप भी रहता था। कई व्यक्तियों ने उसे देखा भी है। पिछले कई वर्षों से वह अदृश्य है।

इस प्रकार भद्रमुनिजी ने इस प्राचीन साधनाभूमि पर अहिंसा की पुनः प्रतिष्ठा कर हिंसक मानवों, पशुओं एवं

प्रेतात्माओं से इसे मुक्त, शुद्ध एवं निर्भय बनाकर साधकों के लिए साधना योग्य बनाया। वहीं की अन्य गुफाओं एवं उपत्यकाओं में कुछ साधक अब निर्भय रूप से साधना कर रहे हैं। उनमें से कुछ का परिचय प्राप्त कर लें।

❋ मैंने देखा उन साधकों को—

यहां विभिन्न प्रांतों के कुछ साधक स्थायी रूप से रहते हैं। हजारों प्रतिवर्ष यथावकाश यहां आते हैं। लाखों की संख्या में पर्यटक भी प्रतिवर्ष इस आश्रम को देखने आते हैं। स्थायी साधकों में से तीन का परिचय प्रस्तुत है:

खेंगारबापा: ८० साल का गठीला शरीर, गोल, चमकदार, भव्य चेहरा, बडी-बडी आंखें, आधी बांह की कमीज व आधा पतलून पहने हुए– ये हैं खेंगारबापा। कभी डोलते, कभी स्थिर कदमों से चलेते हुए वे 'यंत्रमानव' के-से लगते हैं। पद्मासन लगाकर जब वे ध्यान करते तब पहाड के किसी एकाकी, अडिग, पाषाण खण्ड-से लगते।

वे कच्छ के मूल निवासी थे, परंतु मद्रास में बस गये थे। जवाहिरात का उनका कारोबार खूब चल रहा था। अमोल रत्नों की परख करते-करते आंतरिक रतन-आतमाराम की परखने की उत्कट इच्छा जागी, गुफाओं का बुलावा सुनाई दिया। संसार की मोह-माया से मुक्त होने का समय भी हो चुका था। अतः वे सद्गुरु की खोज में निकल पडे। २५,००० रुपयों का खर्च एवं भारत-भ्रमण करने के पश्चात् किसी शुभ

घडी में यहां आ पहुंचे एवं बस गये। सात साल बीत गये, वे अब भी यहीं हैं। यहीं समाधि लगाने की एवं देह छोड़ने की उनकी इच्छा है।•

उन्होंने अपनी साधना में काफी प्रगति की है, ऐसा ज्ञात होता है। उनका विशाल हृदय परोपकार की भावना से भरा हुआ है। वे बोलते बहुत कम हैं, अधिकतर मौन रहते हैं। बाकी लोगों की बातें चल रही हों, तब भी वे बैठे-बैठे आंतर ध्यान में डूब जाते हैं और अपने आत्माराम की बातें सुनने लगते हैं। अधिक समय वे अपनी उपत्यका में बिताते हैं। "निज भाव मां वहेती वृत्ति" की उच्च साधना की प्रतीति में उन्हें दिव्य वाद्यों का अनाहत नाद एवं घंटारव सुनाई देता है। ध्यान एवं भक्ति के सामुदायिक कार्यक्रम के समय पद्मासन में, स्तम्भ-से दृढ बैठे एवं निज आनंद की मस्ती में डोल रहे खेंगारबापा को देखना आल्हाद-प्रदायक है। उनके दर्शन से मैं बड़ा प्रमुदित हो गया।

हां, रात्रि के अंधकार में अगर वे मिल जायें, तो उनसे अपरिचित लोग उनसे डर अवश्य जायेंगे।

आत्माराम : एक अजीब साधक– ये हैं यहां के दूसरे साधक, शरीर हृष्ट-पुष्ट, रंग श्वेत श्याम। नहीं, यह कोई 'मानव' नहीं, 'श्वान' है। नमकहलाल, वफादार फिर भी

• इस लिखावट के कुछ वर्ष बाद खेंगारबापा समाधिपूर्वक देह त्याग कर चुके हैं।

जिसे मानव प्रायः दुत्कार देता है, ऐसा एक 'कुत्ता' है वह। आप पूछेंगे, भला कुत्ता भी साधक हो सकता है ? जवाब है, हां, हो सकता है। श्वेत-श्याम, उदास आखोंवाले और जगत से बेपरवाह लगते इस कुत्ते की चेष्टाओं को देख कर यह मानना ही पडता है उसके पूर्व-संस्कार की बात, पूर्वजन्म में न मानने वाले लोग शायद स्वीकार न करें। परन्तु जागृत आत्माओं के लिए देह का भेद महत्वहीन होता है– आत्मा की सत्ता में माननेवाले बाह्य आकारों को कब देखते हैं ? 'श्वाने च, श्वपाके च' जैसे सूत्र देने वाले 'गीता' जैसे धर्मग्रंथ इसी बात की ओर संकेत करते हैं– ' आत्मदर्शी सर्वभूतों को आत्मवत् देखते हैं।" परंतु 'आत्मा' के अस्तित्व में शंका करनेवाले लोग, श्रीमद् राजचंद्र के शब्दों में–

"आत्मानी शंका करे, आत्मा पोते आप,
शंकानो करनार ते, अचरज एह अमाप।"

पूर्व संस्कार में विश्वास न रखें, तो आश्चर्य नहीं, 'आत्माराम' का पूर्व इतिहास एवं वर्तमान स्वभाव ऐसे लोगों को भी दुविधा मे डाल देनेंवाला है।

'रत्नकूट' के सामने, नदी के पार एक गांव में उसका जन्म हुआ था। जन्म के समय किसी धर्माचार्य ने कहा था कि यह योगभ्रष्ट हुआ पूर्व योगी है, एवं पिछले जन्म में रत्नकूट की एक गुफा में साधना कर रहा था।

इस बात की जांच करने किसी ने उसे कुछ वर्ष पूर्व इस आश्रम के गुफामंदिर के पास छोड दिया था। भद्रमुनि

के साधना-स्थान में ही उसने पिछले जन्म में साधना की थी, इसका स्मरण हो आते ही रोने के बजाय वह खुशी से झूम उठा। लाख कोशिशों के बावजूद वह वहां से हटा नहीं। आश्रम की माताजी करुणावश उसे दूध पिलाने लगी। छोटे शिशु की तरह जब उसे सुलाकर, चम्मच से दूध दिया जाता, तभी वह पीता।

फिर तो माताजी ने उसे अपने पास रख लिया। बडा होने के बाद भी वह माताजी के हाथ का खाना खाता और वह भी दिगंबर क्षुल्लक भद्रमुनिजी की तरह एक ही वक्त। किसी 'भ्रष्ट' योगी के ही ये लक्षण थे। आहार लेने के पश्चात् वह गुफामंदिर में बैठा रहता।

'आत्माराम', यह नाम उसे भद्रमुनिजी ने दिया है। उस नाम से पुकारने पर वह दौडा चला आता है, परंतु सबके बीच होते हुए भी वह असंग, एकाकी रहता है। उसकी अपलक, उदास आंखें गुफा के बाहर, सामने पहाडों की ओर कहीं दूर लगी रहती हैं। उसे देखते ही विचार आता है कि वह शायद आत्मध्यान में, मस्ती में लीन है। सामुदायिक ध्यान-भक्ति के समय वह भी ध्यानस्थ होकर बैठ जाता है एवं घंटों उसी मुद्रा में रहता है।

उसके इन लक्षणों से सबको यही प्रतीति हुई है कि वह निश्चय ही पूर्व का कोई भ्रष्ट योगी साधु था एवं यहीं अब अपना निश्चित जीवन-काल व्यतीत कर रहा है।

आत्माराम की एक अजीब आदत है, बल्कि एक ऐसी समस्या है, एक ऐसी संवेदनपूर्ण पूर्व संस्कार-जनित चेष्टा है कि आश्रम में जब भी कोई अजैन व्यक्ति या साधक आता है तब वह उन्हें पहचान लेता है और उसके कपड़े पकड़ कर खड़ा रहता है। वह न उसे काटता है और न किसी तरह से हानि पहुंचाता है, परन्तु जब तक कोई आश्रमवासी नहीं आता, तब तक उसे हटने नहीं देता। "बड़े समूह में से भी वह जैन-अजैन में भेद कैसे देख पाता है?" यह एक ऐसा रहस्य है, जो सबके लिए आश्चर्य का विषय बन गया है। कारण ढूंढने पर पता चलता है कि पूर्व-जन्म में उसकी साधना में अजैनों ने कई प्रकार की बाधाएं डालीं थीं, अतः उसका बर्तन ऐसा हो गया है। कुछ भी हो, उसकी 'परखकर पकड़ लेने की चेष्टा' उसकी संस्कार-शक्ति की, एवं उसकी 'काटने की या हानि न करने की वृत्ति एवं जागृति' योगी दशा की प्रतीति कराती है।

बाह्य रूप चाहे कोई भी हो, एक जागृत आत्मा के संस्कार कभी नहीं बदलते। इससे यह भी सूचित होता है कि उसकी अब तक की साधना निरर्थक नहीं गई। साधना में देह का नहीं, बल्कि अंतर की स्थिति का महत्त्व होता है– यह उसके नाम (आत्माराम) एवं इस भूमि पर उसके साधक रूप में रहने से विदित होता है।

देवों की भी पूज्य माताजी : इनकी साधना सबसे भिन्न है– एक ऊंचे धरातल पर स्थित है। भक्ति के समय इसका प्रत्यक्ष परिचय हर कोई प्राप्त करता है।

पूर्णिमा की रात है। दूर-दूर से आये यात्रिक एवं स्थायी साधक गुफा-मंदिर में इकट्ठे हुए हैं। एक तरफ माताएँ एवं दूसरी ओर पुरुषों से गुफा-मन्दिर भर गया है। एक तरफ है खेंगारबापा और दूसरी तरफ आत्माराम चौकी-दार के-से अचल। भद्रमुनिजी अंतर्गुफा में हैं, परंतु जैसे-जैसे भक्ति का रंग चढ़ने लगता है, वे भी चैत्यालय एवं श्रीमद् राजचंद्रजी की प्रतिमा के पास आकर बैठते हैं और देहभान भुलानेवाली भक्ति में सम्मिलित होते हैं।

मंद वाद्यस्वरों के साथ भक्ति की मस्ती बढ़ने लगती है.... बारह-एक बजे तक वह अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है। गुफामंदिर पूरे समूह के घोष से गूँज उठता है : "सहजात्म स्वरूप परम गुरु।" देह से भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान करानेवाली, आत्मा-परमात्मा की एकता का दर्शन कराने वाली इस गूँज का प्रतिघोष आस-पास की कंदराओं में सुनाई देता है। चांदनी एवं नीरव शांति के आवरण तले छिपी इस गिरिसृष्टि का दिव्य-सृष्टि में रूपांतरण हो जाता है; और वह स्वर्ग से भी सुन्दर, समुन्नत लगने लगती है। स्वर्ग की भोग-भूमि में भी इस योगभूमि-सा परम, विशुद्ध आनंद दुर्लभ है, तभी तो देवतागण की नज़र भी यहीं होती है।

उन्हें आकर्षित करनेवाले ये साधक-भक्त देहभान तक भूलकर भक्ति में लीन हैं। सबसे निराले हैं पवित्र ओजस से शोभायमान, पराभक्ति की मस्ती में झूमते, अधेड़ वय के ये सीधे-सादे, भोले-भाले माताजी। उनकी अखंड मस्ती देखने, उनका स्निग्ध अंतर-गान सुनने देवगण भी नीचे उतर आते हैं...... खूबी तो यह है कि उन्हें इसका पता या इसकी परवाह नहीं। देवतागण भले ही अदृश्य हों, परंतु उनकी उपस्थिति का आभास सभी को होता है। माताजी की भक्ति से आनंदित होते, अपने को धन्य मानते, ये देवतागण उन पर ढेर सारा सुगंधित 'वासक्षेप' डालते हैं। उस पीले, अपार्थिव द्रव्य को वहां उपस्थित हर कोई देख सकता है, सूंघ सकता है...... नहीं, यह कोई अतिशयोक्तिपूर्ण परिकथा की 'कल्पना' नहीं है, अनुभव की जानेवाली 'हकीकत' है। आप इसे चमत्कार मानें तो यह शुद्ध भक्ति का चमत्कार है। किसी ने कहा है: जगत में चमत्कारों की कमी नहीं है, कमी है उन्हें देखनेवाली 'आंखों' की। अगर आपके पास 'दृष्टि' नहीं है तो दोष किसका ? एक सूफी फकीर भी कह गये हैं:

"नूर उसका, जुहुर उसका,
गर तुम न देखो तो कुसूर किसका ?"

यह दृष्टि विशुद्ध भक्ति से प्राप्त होती है उसके द्वारा उस चैतन्य सत्ता की चमत्कृति का अनुभव हो पाता है। इसी के द्वारा आत्मा-परमात्मा के अंतर को पलभर में मिटाया जा सकता है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' का एक पद याद आता है, जिसका भाव है, "एक गीत.. ..फ़क्त एक गीत अंतर से ऐसा गाऊँ कि राजाओं का राजा भी उसे सुनने नीचे उतर आये।" तब ऐसी पराभक्ति का आनंद उठाने देवता-गण भी आ जायें तो क्या आश्चर्य ? माताजी की ऐसी भक्ति का, 'वासक्षेप' द्वारा वंदन, अनुमोदन, अभिनंदन करते हुए देवता विदा होते हैं।

माताजी की इस उच्च साधना-भूमि का परिचय प्राप्त कर हम भी धन्य हुए।

माताजी, भद्रमुनि के संसारपक्ष की चाची हैं। साधना हेतु वर्षों पूर्व वे यहां आयीं। स्वामी श्री की सेवा-शुश्रुषा का लाभ वे ही लेती हैं। विशेष रूप से आश्रम की बहनों एवं भक्तों के लिए छत्र-छाया बनी रहती है।

इनके अलावा भी अन्य आबाल-वृद्ध, निकट से या दूर से आये, जैन-जैनेतर– सब प्रकार के आश्रमवासी यहां रहते हैं; एक दूसरे से भिन्न; अंदर से और बाहर से निराले।

मैंने उन सब को देखा– सृष्टि की विविधता एवं विधि की विचित्रता, कर्म की विशेषता एवं धर्म-मर्म की सार्थकता के प्रतीक-से वे साधक, जिनका एक ही गंतव्य था– आत्म-प्राप्ति। उन्हें देखकर मेरे मानस-पटल पर श्रीमद् का यह वाक्य उभर आता है :

"जातिवेश नो भेद नहीं; कह्यो मार्ग जो होय।"

* अवधूत की अंतर्गुफा में–

उक्त मार्ग हर प्रकार की आत्यंतिकता से मुक्त, स्वात्म-दर्शन से समन्वित, संतुलित एवं संवादपूर्ण साधनापथ है। 'निश्चय' एवं 'व्यवहार', आचार एवं विचार, साधना एवं चिंतन, भक्ति एवं ध्यान, ज्ञान एवं क्रिया की संधि करानेवाला है। श्रीमद् की 'आत्मसिद्धि शास्त्र' के ये शब्द इसे स्पष्ट करते हैं–

"निश्चयवाणी सांभळी साधन तजवां नोय,
निश्चय राखी लक्षमां, साधन करवां सोय..."

इस निश्चय, इस आत्मावस्था को लक्ष्य में रखते हुए, विविध साधना प्रकारों में जोड़ते हुए, सहजानंदघनजी इस साधना-पथ को प्रशस्त कर रहे हैं।

उनकी खुद की साधना भी ऐसी ही संतुलित है। वीतराग-प्रणीत सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चरित्र की विविध रत्नमयी उनकी यह साधना अब भी जारी है। उन्होंने ज्ञान और क्रिया की संधि की है; इसी में भक्ति का समावेश भी हो जाता है। उनकी ध्यान की भूमिका उच्च धरातल पर स्थित है। उनकी यह साधना निरंतर, सहज एवं समग्र रूप से चल रही है 'केवल निज स्वभावनुं अखंड वर्ते ज्ञान......' आत्मावस्था का यह सहज स्वरूप उनका ध्रुद-बिंदु है। सर्वत्र उन्होंने श्रीमद् का अनुसरण किया है। इस साहजिक तपस्या एवं साधना हेतु वे कई नीति नियमों का पालन भी करते हैं।

ये दिगंबर क्षुल्लक चौबीस घंटों में मात्र एकबार भोजन-पानी लेते हैं। उनके भोजन में शक्कर, तेल, मिर्च-मसाले, नमक का समावेश नहीं होता। कभी-कभी साधकों के मार्गदर्शन हेतु या सत्संग-स्वाध्याय, ध्यान-भक्ति की सामूहिक साधना हेतु वे बाहर आते हैं। अन्यथा वे अपनी गुफा में ही रहते हैं। शाम के सात बजे गुफा के द्वार बन्द हो जाते हैं– वे रत्नकूट की इस स्थूल अंतर्गुफा के साथ-साथ रत्नमय आतम-स्वरूप की सूक्ष्म अंतर्गुफा में खो जाते हैं।

मैंने उनकी बहिर्साधना देखी थी, बाह्य रूप का दर्शन किया था, परंतु इतने से संतोष न था.... मैं उनकी स्थूल अंतर्गुफा के साथ सूक्ष्म अंतर्साधना का परिचय पाना चाहता था। शरद-पूनम की उस चांदनी रात को गुफा मंदिर के सामुदायिक भक्ति कार्यक्रम में मेरे सितार के तार झन-झना रहे थे। इस दिव्य वातावरण का आनन्द उठाता हुआ मैं सितार के तारों के साथ-साथ अंतर के तार भी छेड़ रहा था... मस्त विदेही आनंदघनजी एवं श्रीमद् राजचंद्रजी के पद एक के बाद एक अंतर से निकले – "अवधू ! क्या मांगू गुन-हीना ?" और "अब हम अमर भये न मरेंगे।" तभी भद्र-मुनिजी बाहर आये एवं मेरे सामने बैठ गए। मैं प्रमुदित हुआ। मैंने सोचा–"उनकी तरह अंतर्लोक की आतम गुफा में से मेरी परिचित, उपकारक एवं उपास्य पांच दिवंगत आत्माएं भी यहां उपस्थित हों तो मैं धन्य हो जाऊं। तब भक्ति का रंग और निखरेगा......अगर माताजी के-से भाव अंतर से

प्रस्फुटित हों तो वे अवश्य आयेंगे....... इस विचार से उल्लास बढ़ने लगा....... सितार के तार बजते रहे, अंतर में से स्वर निकलते रहे, अंतरात्मा ने उन पांच दिव्य आत्माओं को निमंत्रण दिया, आंखें बंद हुई एवं बागेश्री के स्वरों में श्रीमद्जी कृत यह गीत ढल गया :

"अपूर्व अवसर ऐसा आयेगा कभी ?
कब होंगे हम बाह्यांतर निर्ग्रन्थ रे,
सर्व संबंध का बंधन तीक्ष्ण छेद कर,
कब विचरेंगे महत्पुरुष के पंथ रे ?"

गीत में खेंगारबापा सम्मिलित हुए .. उनके साथ सारा समूह भी गाने लगा... करताल एवं जंजीरा बजता रहा . भद्रमुनिजी के हाथ में खंजड़ी आ गई · · शायद आत्माराम एवं माताजी भी डोल रहे थे .....

अद्‌भुत मस्ती थी वह... देहभान छूटने लगा, शरीर के साथ-साथ सितार के संग की प्रतीति भी हटने लगी .... एवं एक धन्य घड़ी में मैंने अनुभव किया– "मैं देह से भिन्न केवल आत्मस्वरूप हूँ । उसी में मेरा निवास है .. वही निज निकेतन है... मेरे इस निवास को सदा बनाये रखनेवाला अपूर्व अवसर कब आयेगा ?" यह भावदशा काफी समय तक जागी रही। मैंने उन पांच दिव्य आत्माओं का आभास भी पाया ... वे प्रसन्न हो मुझे आशीर्वाद दे रहे थे...... प्रफुल्लित, प्रमुदित, परितृप्त मैं करीब पौन घंटे तक २१ गाथाओं का 'अपूर्व अवसर' का पद गाता रहा ।

गीत पूरा हुआ, सितार नीचे रखा, परंतु मेरी भावदशा वैसी ही बनी रही। मैं धन्य हुआ। सबसे अधिक प्रसन्न था मैं। सहजानदघनजी ने सबकी प्रसन्नता व्यक्त की एवं उठ खड़े हुए...... उनका आशीर्वाद पाकर मैंने लोभवश उनसे मुलाकात का समय ले लिया, ताकि मैं उनकी अंतर्दशा का संस्पर्श कर सकूं। उस समय रात के तीन बजे थे, पर मैं थका न था और अपूर्व अवसर की उस जाग्रतावस्था में रहना चाहता था, अतः उस समूह से दूर एक एकांत, असंग शिला पर ध्यानस्थ हुआ– उस पुण्यभूमि की चांदनी एवं नीरवता में शून्यशेष आत्मदशा का जो आनंद पाया. वह अवर्णनीय, अपूर्व था। ध्यान के अंत मे उसे अपनी 'स्मरणिका' में शब्द-बद्ध करने का प्रयास (वृथा प्रयास ! क्या उसे शब्दों में बांधा जा सकता है ?) किया, शरीर को थोडा आराम दिया एवं सुबह सहजानंदघनजी से मिलने अंतर्गुफा की ओर चला।

मुनिजी गुफामंदिर में बैठे थे। गुणग्राहिता की दृष्टि से उनसे कुछ पाने एवं उनका साधनाक्रम समझने, मैंने घंटों उनसे चर्चा की। इस चर्चा से मंने उनके गहन ज्ञान, उनकी आत्मानुभूति, पराभक्ति, उन्मुक्तता, प्रेम, बालक की-सी सरलता एवं उच्च ज्ञान दशा का परिचय प्राप्त किया। उनसे प्रेरणा भी मिली. समाधान भी। काफी समय व्यतीत होने पर भी उन्होंने अत्यंत उदारता एवं अनुग्रहपूर्वक प्रश्नों को सुलझाया। इससे उनकी अंतर्दशा-तत्त्वदृष्टि एवं बहिर्साधना का दर्शन हुआ। प्रेमवश उन्होंने अपनी अंतर्गुफा की झलक

भी दिखलायी; यह मेरा सौभाग्य था, क्योंकि यहां किसी को प्रवेश नहीं मिलता (यह सहज भी है;) हम स्वयं अपनी ही अंतर्गुफा में जाने की क्षमता नहीं रखते। मुनिजी ने गुफा की चंदन, धातु, रत्न की विविध कलात्मक जिन-प्रतिमाएँ भी दिखलाईं। चंदन की प्रतिमा की पूजा दैवी वासक्षेप से हुई थी ·····उस पर वह अद्‌भुत, केसरी–पीला, सुगंधित वासक्षेप था ···· विशेष रूप से उस एकांत गुफा में से शांति, नीरवता विकल्प–शून्य स्वरूपावस्था के जो परमाणु निकल रहे थे, वे मुझे ध्यानस्थ कर रहे थे–जागृत रूप में, 'स्व'रूप की ओर।

उस गुफा में से सुन्दर, स्थूल प्रतिमाएँ प्रकट हो रहीं थीं, तो उनकी अन्तरात्मा की सूक्ष्म अन्तर्गुफा में से उनका सूक्ष्म, आन्तरिक स्वरूप । वैखरी–मध्यमा–पश्यंति के स्तरों को पार करती हुई उनकी 'परा' वाणी उनके अन्तर्लोक की ओर संकेत कर रही थी, आत्मा के अभेद परमात्म-स्वरूप को प्रकट कर रही थी।

उनकी गुफा एवं उनके अंतर के उस निगूढ़तम स्वरूप तक पहुँचकर, उसका सार पाकर मैं आनन्दित था, कृतार्थ था।

इस संस्पर्श के पश्चात् अपनी स्वरूपावस्था को विशेष रूप से जाग्रत करता हुआ मैं अपने देह का किराया चुकाने, आहार रुचि न होने पर भी, भोजनालय की ओर चला।

* जब "मौन" महालय "मुखर" हुए ....

भोजन इत्यादि के बाद मैं निकट के ऐतिहासिक अवशेष देखने निकल पड़ा। विजयनगर - साम्राज्य के ६० मील के विस्तार में ये अवशेष फैले हैं – महालय, प्रासाद, स्नानगृह, देवालय एवं ऊँचे शिल्पसभर गोपुर; श्रेणीबद्ध बाज़ार, दुकानें, मकान; राज-कोठार एवं हस्तिशाला – इन पाषाण अवशेषों में से उठ रही ध्वनि सुनी। एक मंदिर के प्रत्येक स्तंभ में से विविध तालवाद्यों के स्वर सुनाई देते थे।

दूर दूर तक घुमकर ढलती दोपहरी के समय 'रत्नकूट' को लौटा और एक शिला पर खड़ा होकर उन अवशेषों को देखता रहा ....

वे मूक पत्थर एवं मौन महालय ' मुखर ' हो बोल रहे थे, अपनी व्यथाभरी कथा कह रहे थे . मेरे कान और मेरी आँखें उनकी ओर लगी रहीं .... उन पाषाणों की वाणी सुनकर मैं अंतर्मुख हुआ .... कई क्षण इसी नीरव, निर्विकल्प शून्यता में बीत गये .... अंत में जब बहिर्मुख हुआ तब सोचने लगा – " कितनी सभ्यताओं का यहाँ निर्माण एवं विनाश हुआ; कितकितने साम्राज्य यहाँ खड़े हुए और अस्त हो गये !! कितने राजा – महाराजा आये और चले गये !!!

"ये टूटे खंडहर एवं शिलाएँ इसके साक्षी हैं। वे यहाँ हुए उत्थान–पतन का संकेत देते हैं और निर्देश करते हैं जीवन

की क्षण-भंगुरता की ओर; *Ozymandias of Egypt* की पाषाण मूर्ति की तरह उस अरूप, अमर, शाश्वत आत्मतत्त्व का भी संदेश दे जाते हैं, जिसका कभी नाश नहीं होता, और जिसे कई महापुरुषों ने इसी पुण्यभूमि पर प्राप्त किया था......!"

ध्यानारूढ़ योगियों की चरण रेणु से धूसरित "शिलाओं के चरण पखारता, कलकल निनाद करता, हस्ति-सी मंथर, गंभीर गति से बह रहा है—तुँगभद्रा का मंजुल नीर! उनके अविरत बहाव पें से घोष उठ रहा है– "कोऽहम्? कोऽहम्?" "मैं कौन हूँ? मैं कौन हूँ?"

और निकट की शिलाओं में से प्रतिघोष उठता है – "सोऽहम्.......... सोऽहम् .... शुद्धोऽहम् .... बुद्धोऽहम् .... निरंजनोऽहम् .... सच्चिदानंदी शुद्ध स्वरुपी अविनाशी मैं आत्मा हूँ........आनंदरुपोऽहम् .... सहजात्मरुपोऽहम्।"

'शाश्वत' की ओर संकेत कर रहे इन घोषों – प्रतिघोषों को उन 'विकृत' खंडहरों (और अब भी ऐसे निष्प्राण भवन खड़े कर रहे नशोन्मत्त सत्ताधीशों) ने सुना या नहीं, इसका पता नहीं, परंतु मेरे अंतर में यह घोष उतर चुका था, गूँज रहा था, मैं आनंदित हो रहा था, शून्यशेष हो रहा था, मेरे शाश्वत आत्मस्वरुप की विकल्परहित संस्थिति में ढल रहा था!

और अब तो महालयों के वे अवशेष भी मुखर होकर अपनी हार के साथ शाश्वत के संदेश को भी स्वीकार कर रहे थे .... अविचलित थे वे सत्ताधीश, जो इस अनादि रहस्य को समझने में असमर्थ थे। ये घोष-प्रतिघोष शायद उन तक न पहुँच सके, परंतु रत्नकूट की गुफाओं मे गूँज रहे राजचंद्रजी के ज्ञान-गंभीर घोष तो वे सुन सकते हैं, अगर उनके कान इसे सुनना चाहें ! जड़ पदार्थों की क्षणभंगुरता के बारे में श्रीमद् कहते हैं :

"छो खंड ना अधिराज ज़े चंडे करीने नीपज्या,
ब्रह्मांड मां बलवान थईने भूप भारे ऊपज्या ;
ए चतुर चक्री चालिया होता-नहोता होइने,
जन जाणीए मन मानिए नव काळ मूक कोइने...!
"जे राजनीति निपुणतामां न्यायवंता नीवड्या,
अवळा कर्ये जेना बधा सबळा सदा पासांपडया,
ए भाग्यशाळी भागिया ते खटपटो सौ खोईनें,
जन जाणीए मन मानीए नव काळ मूके कोईनें...!"

('मोक्षमाला')

गुफा में गूंज रही आनंदघनजी की आवाज़ भी यही कह रही है –

"या पुद्गल का क्या विश्वासा,
झूठा है सपने का वासा ....

झूठा तन धन झूठा जोबन, झूठा लोक तमासा,
आनंदघन कहे सब ही झूठे, साचा शिवपुरवासा ।"

(आनंदघन पद्य रत्नावली)

और भूधर एवं कबीर के दोहे भी –

" राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ! "

(–भूधरदास : बारह भावना)

" कबीर थोड़ा जीवणा, मांडे बहुत मंडाण ।
सब ही ऊभा मेलि गया, राव रंक सुलतान "

(– कबीर : कबीर ग्रंथावली)

❋ सम्यग् साधना की समग्र दृष्टि :–

शिवपुर–निजदेशकी ओर संकेंत करते ये घोष-प्रतिघोष मेरे अंतरपट से टकरा कर स्थिर हो चुके थे – आश्रमभूमि पर मेरे प्रथम २४ घंटों के अंतर्गत ही ! इस अल्प समय में मैंने कई अनुभव किये !! अनुभवी ज्ञानियों का संग पाकर मेरी विश्रृंखल साधना पुनः सुव्यबस्थित हुई मैं दुबारा मुनिजी के पास जाने के लोभ का संवरण न कर पाया ।

पुनः उनके साथ महापुरुषों की जीवन - चर्या एवं उनकी सम्यग् साधना दृष्टि से संबंधित प्रश्न - चर्चा हुई । महायोगी आनंदघनजी विषयक मेरी जिज्ञासा के साथ इसका आरंभ हुआ। भगवान महावीर, तथागत बुद्ध, कलिकल सर्वज्ञ हेम-

चंद्राचार्य, आचार्य हरिभद्रसूरि, देवचंद्रजी, यशोविजयजी, कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी, कुंदकुंदाचार्यजी और विहरमान तीर्थंकर भगवान सीमंधर स्वामी जैसे लोकोत्तर व्यक्तियों की चेतनाभूमि में मुनिजी के संग मैंने विहार किया .... उन दिव्य - प्रदेशों की यात्रा ने मुझे अत्यंत समृद्ध एवं स्वत्व - सभर बना दिया।

तत्पश्चात् वर्तमान जैनाचार्यों एवं अन्य महापुरुषों के साधना प्रदेश में विचरण किया। गांधीजी, श्री अरविंद, रवीन्द्रनाथ, मल्लिकजी, विनोबाजी, चिन्नम्मा इत्यादि की साधनादृष्टि की तुलना की। इससे मैंने यही सार निकाला : "आत्मदीप बन ! .....अपने आपको पहचान !..... तू तेरा सम्हाल !" और इसके फलस्वरूप मेरी विद्या की, ज्ञान-दर्शन-चारित्र साधना की, आत्मानुभूति की अभीप्साएँ पुनः जाग्रत हुई। वीतराग प्रणीत साधनापथ एवं श्रीमद् राजचंद्रजी का जीवनदर्शन, आज तक के मेरे अनुभव एवं आज की प्रश्नचर्चा के बाद मुझे अपना उपादेय प्रतीत होने लगा। कुछ समय पश्चात्, अपनी साधना दृष्टि का विशेष रूप से स्पष्टीकरण हेतु मैंने उनसे प्रश्न किया था। उनके उत्तर से श्रीमद् की, उनकी - खुद की और आश्रम की समग्र, सारग्राही, संतुलित साधनादृष्टि प्रकट होती है। उन्होंने लिखा था : "आपके हृदयरूपी मंदिर में अगर श्रीमद् की प्रशमरस निमग्न, अमृतमयी मुद्रा प्रकट हुई हो, तो उसे वहीं स्थिर बनाइए। अपने चैतन्य का उसी स्वरूप में परिणमन ही

थीं ……… … उनके इस बंधन से छूटना आसान न था……
उस चिर-परिचित-से निमंत्रण को टालना संभव न था………
पर अंत में निरुपाय हो वहां से चला – यथासमय पुन आने के संकल्प के साथ, कर्त्तव्यों की पूर्ति कर ऋणमुक्त होने। श्रीमद् के, स्वयं की अवस्था के सूचक ये शब्द, जैसे मेरी ही साक्षी दे रहे थे :

"अवश्य कर्मनो भोग छे; भोगववो अवशेष रे,
तेथी देह एक ज धारीने, जाशुँ स्वरुप स्वदेश रे,
धन्य रे दिवस आ अहो।"

परंतु एक ही देह धारण-कर स्वरुप-स्वदेश, निज निकेतन पहुँचने का सौभाग्य उनके–से भव्यात्माओं का ही था, क्योंकि वे जीवन–मरण के चक्कर से मुक्त हो चुके थे; जब कि मुझ-सी अल्पात्मा को कई भवों का पंथ काटना शेष था ! परंतु गुफाओं के साद, गुफाओं के बुलावे मुझे हिंमत दे रहे थे: "सर्वजीव हैं सिद्ध सम, जो समझें, बन जायँ।" (श्रीमद्) साथ ही स्वयं सिद्धि की क्षमता की ओर निर्देश कर रहे थे; निश्चिंतता एवं निष्ठापूर्वक शीघ्रही वापस आने का निमंत्रण दे रहे थे। मैं जानता था कि इस निमंत्रण को मैं ठुकरा नहीं पाऊंगा अतः यह संकल्प करते हुए कि एक दिन इन्हीं गुफाओं में साधना हेतु निवास करुंगा, मैं निकल पडा। मेरे साथ भव्य, भद्रहृदय भद्रमुनिजी, भक्तिसभर माताजी, ओलिये खेंगारबापा एवं मस्त मौनी आत्माराम के आशीर्वाद थे; इस आशीर्वाद

का प्रतीक था वह दिव्य 'वासक्षेप' जिसे मुनिजी ने अत्यंत प्रेम से मुझे दिया था! मेरे मस्तक पर मढ़ दिया था!!

✤ ✤ ✤

अपनी दिवस-यात्रा पूरी कर सूरज दूर क्षितिज में ढ़ल रहा था; धरती से विदा हो रहा था और मैं अपनी साधना यात्रा पूरी कर इस तीर्थ भूमि से विदा हो रहा था; आकाश विविध रंगों से भर गया था ………मंद-मंद समीर बह रहा था … गुफा मंदिर में से मेरे ही गाये गीत की प्रतिध्वनि उठ रही थी :

" अेह परम पद प्राप्तिनुं कर्युं ध्यान में,
गजा वगर ने हाल मनोरथ रूप जो;
तो पण निश्चय राजचंद्र मनने रह्यो,
प्रभु–आज्ञाए थाशुं ते ज स्वरुप जो–
अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ? "

'अपूर्व अवसर' की प्रतीक्षा की अभीप्सा से परिपूर्ण यह प्रतिध्वनि मेरे कानों में गूँजती हुई, अंतर में अनुगूँज जगा रही थी, तो बाहर से इस सबको परिवृत्त - *Superimpose* - कर रहा प्रचंड आदेश सामने की एक उपत्यका में से आ रहा था:

" विरम विरम संगान्, मुञ्च मुञ्च प्रपंचम्,
विसृज विसृज मोहम्, विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम्,
कलय कलय वृत्तम्, पश्य पश्य स्वरूपम्,
भज विगत विकारं स्वात्मनात्मान मेव .....! "

और सामने फैली गिरिकंदराएं इन पंक्तियों को जैसे दोहरा रहीं थीं –

" विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम्.........विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम्
पश्य पश्य स्वरूपम् .... पश्य पश्य स्वरूपम् "

" स्वतत्त्व को – स्वयं के तत्त्व को पहचानो "
" स्वरूप को–अपने परम आत्म-रूप को देखो ! "

और तभी वीतराग-वाणी, निर्ग्रंथ प्रवचन को प्रमाणित करती श्रीमद् की वाणी गूँज उठी :

" जिसने आत्मा को जाना, उसने सब को जाना ।"
" जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ ....।"

पुनः गिरि-कंदराओं में से घोष उठा :

" विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम्–स्वयं के तत्त्व को पहचान! ... पश्य पश्य स्वरुपम् - अपने आतमरूप को देख! " ....

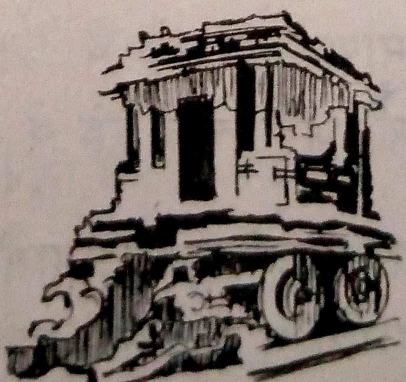
इस प्रतिध्वनि के साथ मेरी आतमा मुक्त आकाश में विहार करने लगी, और मैं अनिच्छापूर्वक रत्नकूट की उस धरती पर से नीचे उतरने लगा – उस आश्रम के केंद्र और मेरे जीवन के आराध्य परमगुरु श्रीमद्‌जी की भव्यातमा को नमन करते हुए :

"देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत,
ए ज्ञानीना चरणमां, हो वंदन अगणित।"

मेरी यह साधना-यात्रा बाहर से समाप्त हो चुकी है... परंतु आंतरिक रूप में जारी है। आज मैं स्थूलरूप से उस योग भूमि से दूर हूँ, और अब भी दूर जा रहा हूँ, परंतु रत्नकूट की गुफाओं के वे गंभीर ज्ञानघोष मुझे कर्म के प्रत्येक संचार में, योग के प्रत्येक प्रवर्तन में, विवेक एवं विशुद्धि, अनासक्ति एवं जागृति बनाये रखने की प्रेरणा दे रहे हैं, नित्य-नैमित्तिक कर्त्तव्य एवं जीवन व्यवहार के बीच 'स्वरूप' से मेरा अनुसंधान करा रहे हैं :

"विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम् ......।"
"पश्य पश्य स्वरूपम्.........।"

"जिसने आत्मा को जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया........।"



विलक्षण योगी संस्थापक का वृत्तांत है, जो असमय ही चल पड़ा अपनी चिरयात्रा को, चिरकाल के लिए, अनेकों को चीखते-चिल्लाते, परम विरह में तड़पते छोड़कर और अनेकों के आत्म-दीप जलाकर ! "जोगी था सो तो रम गया", 'मत जा, मत जा' की तुहाई देते हुए भी चल बसा अपने 'महा-विदेह' के परम गंतव्य को, परंतु उसकी यह पावनकारी साधनाभूमि रह गई–अनेकों को जगाने, अपने आपको अपने से जोड़ने .... !

उस परम योगी की लोकोत्तर आत्म साधना का साक्षी यह आश्रम पड़ा-पड़ा अपनी करवटें बदल रहा है और उसकी पराभक्तिवान, परम वात्सल्यमयी, परम करुणामयी आत्मज्ञा अधिष्ठात्री पूज्य माताजी की पावन निश्रा में बुला रहा है, चिरकाल का बुलावा दे रहा है–बिना किसी भेद के, सभी सच्चे खोजी आत्मार्थी साधकों-बालकों को : अपना भक्ति-कर्तव्य-आत्म-कर्तव्य साधने, 'स्वयं' को खोजने, 'स्व' के साथ 'सर्व' का आत्म-साक्षात्कार पाने .... !!



परिचय झांकी-अवधूत आत्मयोगी की :

महत् पुरुषों का देहधारण उनके स्वयं के आत्मसिद्धि क्रमारोहण के उद्देश्य के उपरान्त जगत् के जीवों के कल्याण के लिए भी होता है। कई महापुरुषों की जीवनचर्या, उनकी लघुता, अहंशून्यता एवं केवल आत्मलक्षिता के कारण अप्रकट, अज्ञात एवं गुप्त रहती है। इस काल में ऐसे ही सत्पुरुष थे 'भद्रमुनि' दीक्षा-नामधारी एवं अद्वितीय स्वपुरुषार्थ से आत्म-ज्ञान संप्राप्त अवधूत योगीन्द्र युग प्रधान श्री सहजानंदघनजी महाराज। न तो उन्होंने अपने जीवन के सम्बन्ध में विशेष कुछ प्रतिपादित या प्रसिद्ध किया है, न उन्होंने औरों को भी इस कार्य हेतु लेशमात्र प्रेरित किया है। इतना ही नहीं, उनके सम्बन्ध में लिखने और प्रसिद्ध करने वालों को उन्होंने रोका भी है!! "हीरा मुख से ना कहे लाख हमारा मोल" वाली उक्ति से भी आगे बढ़कर यहां तो पारखीजनों को भी अपनी प्रसिद्धि या प्रचार के सम्बन्ध में रोकने की उनकी वृत्ति और प्रवृत्ति परिचायक है उनकी लघुता में छिपी महा-नता की!

उनके अखंड साधनारत अज्ञात-गुप्त जीवन की अनेक में से एक घटना इस बात का महत्त्वपूर्ण संकेत करती है। एक बार किसी अपरिचित साधक-संत ने उनके जीवन से अभिभूत होकर, उनके सम्बन्ध में विशेष जानने हेतु उनका नाम-ठाम जाति-धर्मादि परिचय पूछा। आप कल्पना कर सकते हैं उन्होंने क्या प्रत्युत्तर दिया होगा? उन्होंने अपनी

अंतर आत्मावस्था का इंगित करनेवाली यह अद्‌भुत मर्म वाणी अभिव्यक्त की :–

"नाम सहजानंद मेरा नाम सहजानंद ।
अगम - देश अलख - नगर - वासी मैं निर्द्वन्द्व ।। नाम...
सद्‌गुरु - गम तात मेरे, स्वानुभूति मात ।
स्याद्वाद कुल है मेरा, सद्‌विवेक भ्रात ।। नाम...
सम्यग् - दर्शन देव मेरे, गुरु है सम्यग् ज्ञान ।
आत्म-स्थिरता धर्म मेरा, साधन स्वरुप-ध्यान ।। नाम...
समिति है प्रवृत्ति मेरी, गुप्ति ही आराम ।
शुद्ध चेतना प्रिया सह, रमत हूँ निष्काम ।। नाम...
परिचय यही अल्प मेरा, तनका तनसे पूछ ।
तन-परिचय जड़ ही है सब, क्यों मरोड़े मूँछ ?"

अपने बाह्य परिचय बाह्य जीवन से नितान्त उदासीन ऐसे इस महापुरुष का परिचय हम दें भी क्या? बाह्य जानकारी अल्प लभ्य है और आंतरिक असम्भव !!

यदि उनकी ही अनुग्रहाज्ञा हुई तो यह असम्भव भी सम्भव हो पायेगा और हम उनके बाह्यांतर जीवन की कुछ परिचय-झांकी इस 'दक्षिणापथ की साधना यात्रा' के संधान-पंथ में दे पायेंगे । तब तक के लिये इस अवधूत आत्मयोगी द्वारा प्रज्वलित सभी के आत्मदीपों को अभिवन्दना ।

R
Book Completely Recorded
[illegible]

लेखक की कुछ प्रमुख कृतियाँ :

* अनंत की अनुगूँज (पुरस्कृत) : आत्मखोज के गीत
* महासैनिक (पुरस्कृत) : गांधीजी एवं श्रीमद् राजचंद्रजी विषयक नाटक
* जब मुर्दे भी जागते हैं ! (पुरस्कृत) जलियाँवाला बाग संबंधित नाटक
* संत शिष्य नी जीवन सरिता : जीवनी
* स्थितप्रज्ञ के संग : संस्मरण-विनोबाजी विषयक
* गुरुदेव के साथ : रवीन्द्रनाथ ठाकुर विषयक
* विदेशों में जैन धर्म प्रभावना।
* Mystic Master Yogindra Yogapradhan Sri Sahajanandaghanji
* Jainism Abroad

(अंतिम पाँच मुद्रणाधीन)

लेखक के कुछ प्रसिद्ध संगीत रिकार्ड एवं कैसेट :

* आत्मसिद्धि-अपूर्व अवसर * राजपद-राजभक्तिपद
* भक्तामर स्तोत्र-कल्याण मंदिर स्तोत्र
* ईशावास्य उपनिषद-स्थितप्रज्ञा ॐ तत्सत्
* आत्मखोज (अनंत की अनुगूँज)
* ध्यान संगीत-धुन और ध्यान
* जिनवन्दना-जिनेन्द्र दर्शन-जयजिनेश प्रवचन
* अमेरिका में संगीत कार्यक्रम

ज्ञान भारती इन्टरनेशनल फाउन्डेशन

हंपी-बेंगलोर-मैरीलैन्ड-पिट्सफर्ड-न्यूयार्क-लन्डन ।

आवरण मुद्रक : दीपक आर्ट प्रिंटर्स, कोठी, हैदराबाद